



Date:02-12-20

Regional priorities

The SCO serves India's quest for geopolitical balance and regional engagement

Editorial

Three years after joining the eight-nation Shanghai Cooperation Organisation (SCO), India hosted the SCO heads of governments (HoG) meeting for the first time on Monday. The focus of the 66-point joint communiqué at the end of the virtual conference was in developing a “Plan of Priority Practical Measures for 2021-2022 to overcome the socio-economic, financial and food consequences of COVID-19 in the region”. Members committed to strengthening multilateralism and the UN charter while welcoming the fact that the grouping is now being seen as an “influential and responsible participant in the modern system of international relations”. The meeting also showed up persisting differences. Although the HoG Council consists of the Prime Ministers of all SCO countries, neither Prime Minister Narendra Modi nor Pakistan Prime Minister Imran Khan attended the meet, ostensibly due to a protocol mismatch between the position of PMs in parliamentary democracies versus those in the former Soviet bloc and China. Mr. Modi was represented by Vice-President Venkaiah Naidu, who made strong observations on cross-border terrorism; he called it the SCO region’s “biggest challenge”, in comments aimed at Pakistan. Pakistan’s representative too spoke of the need to combat what she called “state terrorism” in disputed areas, in a reference to Jammu and Kashmir. The SCO is a rare forum where India-Pakistan troops take part in joint exercises under the Regional Anti-Terror Structure, although it would seem the two countries have come no closer on the issue. Neither statement on terrorism was reflected in the final joint statement, which focused on trade and economic issues. India also marked its differences with China over the BRI by not joining other SCO members in a paragraph endorsing the BRI. Mr. Naidu made a pitch for “transparent and trustworthy” trade practices, seen as a sidebar aimed at China.

Regardless of the differences, the Modi government has consistently maintained the importance of the SCO grouping, referred to as the “Asian NATO” although it does not mandate security alliances. The SCO is one of the few regional structures India is a part of now, given a decline in its engagement with SAARC, BBIN and the RCEP. The SCO provides India a convenient channel for its outreach — trade and strategic ties — to Central Asian countries. It has afforded a platform, when needed, for bilateral discussions with the two countries India has the most tense ties with: China and Pakistan. While the government has eschewed meetings with Pakistan for the last five years, it has used the SCO for talks with China, including this year amidst the LAC stand-off, when Rajnath Singh and S. Jaishankar met their counterparts on the sidelines of SCO meets. Above all, the SCO has been seen as a grouping worth pursuing as it retains India’s geopolitical balance, a useful counterpoint to New Delhi’s otherwise much more robust relations with the western world, and hosting the SCO meeting was one more step towards developing that engagement.



मुमकिन है रोजगार सृजन का वादा

जीएन वाजपेयी, (लेखक सेबी और एलआइसी के पूर्व चेयरमैन हैं)



कोरोना काल की कशमकश के बीच सफलतापूर्वक संपन्न हुए बिहार विधानसभा चुनाव भारतीय लोकतंत्र और प्रशासन की मजबूती के प्रतीक बने। अब नीतीश कुमार के नेतृत्व में नई सरकार ने राज्य की कमान भी संभाल ली है। उम्मीद है कि सरकार अब जनता की उन परेशानियों को दूर करने की दिशा में तेजी से काम करेगी, जिन वादों पर भरोसा करके जनता ने सत्ता में उसकी वापसी कराई। देश भर में सबसे ज्यादा प्रवासी मजदूर बिहार से ही जाते हैं। कोरोना महामारी की भयावहता के शिकार हुए ऐसे तमाम मजदूरों को विकट परिस्थितियों में वापस अपने गृह राज्य लौटना पड़ा।

आर्थिक मुश्किलों के कारण उनके त्रासद जीवन की दर्दनाक दास्तान सुनकर किसी भी संवेदनशील व्यक्ति का दिल पसीज जाएगा। शायद इसी पहलू ने विभिन्न दलों का घोषणापत्र तैयार करने वालों को उसमें रोजगार सृजन के मुद्दे को व्यापकता के साथ शामिल करने के लिए प्रेरित किया। परिणामस्वरूप महागठबंधन ने जहां अगले पांच वर्षों के दौरान 10 लाख नए रोजगार सृजित करने का वादा किया तो वहीं राजग ने उससे कहीं बढ़कर 19 लाख नई नौकरियां देने की बात कही।

‘ईज ऑफ डूइंग बिजनेस’ के मामले में बिहार 26वें स्थान पर है। इस रैंकिंग को लेकर बिहार इंडस्ट्रीज एसोसिएशन यानी बीआइए के प्रेसिडेंट आरएल खेतान ने कहा कि उन्हें इस पर कोई हैरानी नहीं हुई, क्योंकि राज्य में अन्य पहलुओं के साथ ही बुनियादी ढांचे की हालत बहुत खस्ता है। अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा, ‘राज्य में प्लास्टिक और परिवहन से लेकर कई अन्य उद्योगों से जुड़ी हमारी करीब 11 इकाइयां हैं और मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि कारोबारियों को निम्न स्तरीय सुविधाएं मुहैया कराई जाती हैं।’ खेतान के अनुभव से स्पष्ट है कि अगले पांच वर्षों के दौरान राज्य में निजी क्षेत्र द्वारा रोजगार सृजन की संभावनाएं कमजोर हैं। ऐसे में कारोबारी परिदृश्य के लिए अनुकूल परिवेश तैयार करने की प्राथमिकता के साथ ही यह भी मुख्य रूप से सरकार का ही दायित्व है कि अगले पांच वर्षों में रोजगार सृजन के वादे की जिम्मेदारी उसे ही उठानी होगी।

बुनियादी ढांचा केंद्र में सत्तारूढ़ मोदी सरकार की शीर्ष प्राथमिकताओं में शामिल है। देश भर में एक्सप्रेस-वे के जरिये व्यापक रूप से सड़कों का जाल बिछाने के काम पर अपेक्षित रूप से ध्यान दिया जा रहा है। भूतल परिवहन मंत्री नितिन गडकरी ने 1,320 किलोमीटर लंबे निर्माणाधीन नई दिल्ली-मुंबई एक्सप्रेस-वे के तमाम फायदों में से एक फायदा यह भी

गिनाया कि इससे 50 लाख कार्यदिवसों के बराबर रोजगार सृजित होंगे। जहां तक बिहार की बात है तो वहां कोई ऐसा एक्सप्रेस-वे नहीं है और न ही कोई ऐसा मार्ग निर्माणाधीन है, जबकि पड़ोसी उत्तर प्रदेश में इससे उलट स्थिति है। इस बीच उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा विकसित किए जा रहे पूर्वांचल एक्सप्रेस की कड़ी को आगे बढ़ाकर पटना को नई दिल्ली से जोड़ने की चर्चा भी चल रही है। वहीं पटना एयरपोर्ट के मौजूदा हालात ऐसे हैं कि अगर किसी मुसाफिर की मजबूरी न हो तो वह शायद ही दोबारा वहां आना चाहे। यहां नए टर्मिनल के भी मार्च 2023 तक तैयार होने का अनुमान है।

किसी राज्य का आधुनिकीकरण सड़क, बंदरगाह और हवाई अड्डे आदि के निर्माण से ही आरंभ होता है। अनुभवजन्य साक्ष्य यही दर्शाते हैं कि बुनियादी ढांचे का विकास बड़ी तादाद में रोजगार सृजन करता है। बिहार का प्राचीन और समृद्ध इतिहास रहा है। यहां राजगीर में नालंदा विश्वविद्यालय के ध्वंसावशेष, बोधगया और सीतामढ़ी जैसे तमाम स्थल हैं, जिनमें देसी-विदेशी पर्यटकों को अपनी ओर खींचने का पर्याप्त आकर्षण है। राज्य के पर्यटन क्षेत्र में भी रोजगार सृजन के लिए भारी संभावनाएं विद्यमान हैं। राज्य के पास मौजूद कौशल के लिए भी यह कारोबार उपयुक्त है, परंतु खस्ताहाल बुनियादी ढांचे के कारण राज्य इसका लाभ उठाने से वंचित बना हुआ है।

ऐसे में नीतीश सरकार को कम से कम चार एक्सप्रेस-वे निर्माण पर विचार करना चाहिए। इसमें गाजीपुर-पटना, पटना-गया, पटना-भागलपुर और पटना-सीतामढ़ी का चुनाव किया जा सकता है। यह लगभग 800 किमी लंबा एक्सप्रेस-वे होगा, जिसमें 30 लाख रोजगार दिवसों के बराबर रोजगार सृजन की संभावनाएं होंगी। वहीं पटना, गया, भागलपुर और मुजफ्फरपुर में नए हवाई अड्डों और इन शहरों की कनेक्टिविटी से जुड़े संबंधित बुनियादी ढांचे का विकास और उससे निजी क्षेत्र को होने वाले फायदे से सृजित हुए रोजगार मिलकर पांच वर्षों में 19 लाख नौकरियों के वादे को पूरा करने का माददा रखते हैं।

कोरोना संकट ने घर से काम करने को एक आवश्यकता बना दिया है। ऐसे में कर्नाटक, तमिलनाडु और तेलंगाना जैसे राज्यों की बिजनेस प्रोसेस आउटसोर्सिंग यानी बीपीओ इकाइयां गांवों की ओर रुख कर रही हैं। केंद्र सरकार पहले ही वादा कर चुकी है कि वह देश में प्रत्येक पंचायत को ब्रॉडबैंड से जोड़ेगी। ऐसे में बिहार के अर्धशहरी क्षेत्र इस अवसर को लपक सकते हैं। हालांकि इसे भुनाने के लिए कनेक्टिविटी और बुनियादी ढांचा क्षमताएं विकसित करनी होंगी। वैसे भी इन बीपीओ में तमाम प्रवासी बिहारी ही कार्यरत हैं।

वास्तव में बुनियादी ढांचे का विकास निराशा के माहौल को जीवंत आर्थिक परिवेश में बदल देगा। इससे अवसरों को भुनाने में दिलचस्पी रखने वाले तमाम खिलाड़ी राज्य की ओर आकर्षित होंगे। यदि इसके साथ-साथ ईज ऑफ डूइंग बिजनेस और ई-गवर्नेंस के मोर्चे पर भी आवश्यक सुधार संभव हो सके तो राज्य तेजी से तरक्की करने वाले गतिशील सूबों की सूची में अवश्य शामिल हो जाएगा। बुनियादी ढांचे और गवर्नेंस में सुधार के अभाव में आयोजित किए जाने वाले निवेशक सम्मेलन मात्र फोटो खिंचाने के अवसर और सहमति पत्रों पर हस्ताक्षर करने वाले जलसे ही बनकर रह जाएंगे।

प्रचार के दौरान नीतीश कुमार ने एलान किया था कि यह उनका आखिर चुनाव है। 'सुशासन बाबू' के रूप में उनका नाम तभी इतिहास में दर्ज होगा, जब वह अपने शासन को समृद्धि बढ़ाने वाली विरासत के रूप में छोड़ें। तभी वह संतुष्टि के साथ विदाई लेने के साथ उस कर्ज को उतार सकते हैं, जो राज्य के मतदाताओं ने बीते दो दशकों में उनमें भरोसा दिखाकर उन पर चढ़ाया है।

Date:02-12-20

ऊर्जा क्षेत्र में नयी क्रांति की दस्तक

अरविंद मिश्रा, (लेखक ऊर्जा संबंधी मामलों के जानकार हैं)



लगातार बढ़ता प्रदूषण कई समस्याओं की वजह बन रहा है। इससे कार्बन उत्सर्जन में बेतहाशा वृद्धि हो रही है। परिणामस्वरूप वैश्विक तापमान में निरंतर बढ़ोतरी हो रही है। हिमालय से लेकर अंटार्कटिका तक बर्फ की पिघलती चादर ने मानव जीवन के समक्ष गंभीर संकट खड़ा कर दिया है। इन सबके पीछे जीवाश्म ईंधनों के अतिशय प्रयोग को महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। पेट्रोल और डीजल से चलने वाले वाहनों से निकलने वाला जहरीला धुआं पर्यावरण ही नहीं, मानव सभ्यता पर ही प्रश्नचिन्ह खड़े कर रहा है। खास बात यह है कि जीवाश्म ईंधन के स्नोत जहां सीमित

हैं, वहीं ये अक्षय ऊर्जा संसाधनों के मुकाबले पर्यावरण को कई गुना अधिक प्रदूषित करते हैं। इन परिस्थितियों में हाइड्रोजन ऊर्जा को भविष्य के ईंधन के रूप में देखा जा रहा है।

वर्तमान परिस्थितियों में हाइड्रोजन ऊर्जा की उपयोगिता को देखते हुए विश्व के कई विकसित और विकासशील देशों ने इस दिशा में प्रभावी कदम उठाए हैं। दुनिया की दिग्गज ऑटोमोबाइल कंपनियां भी अब हाइड्रोजन फ्यूल सेल से चलने वाली कारें बना रही हैं। वे इस दिशा में व्यापक निवेश कर रही हैं। दरअसल हाइड्रोजन फ्यूल सेल हवा और पानी में किसी तरह के प्रदूषक तत्व नहीं छोड़ते हैं। इसमें उत्प्रेरक शक्ति के लिए हाइड्रोजन का उपयोग होता है। एक बार टैंक फुल होने पर हाइड्रोजन कारें 400 से 600 किलोमीटर तक चल सकती हैं। यही नहीं इन वाहनों को पांच से सात मिनट में रीफ्यूल भी किया जा सकता है। वहीं इलेक्ट्रिक कारों को पूरी तरह चार्ज होने में 12 घंटे से अधिक समय लग जाता है। हाइड्रोजन फ्यूल सेल तकनीक रासायनिक ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित करती है। इसमें हाइड्रोजन गैस और ऑक्सीजन का उपयोग होता है। हाइड्रोजन के दहन से कोई प्रदूषण भी नहीं होता। हाइड्रोजन ऊर्जा हमारे लिए राजस्व की बचत का भी माध्यम बन सकती है। ऊर्जा के इस अक्षय स्नोत का जितना अधिक उपयोग बढ़ेगा, उसी अनुपात में तेल आयात को कम करने में मदद मिलेगी।

ऊर्जा क्षेत्र में दस्तक दे रही इस नई क्रांति को समझने के लिए इसके तकनीकी पहलुओं के साथ इसके विकास एवं अनुप्रयोग से जुड़ी पृष्ठभूमि को भी समझना होगा। कोयले की जगह पानी ही भविष्य में ऊर्जा का आधार बनेगा, 1874 में इस सिद्धांत को प्रमाणित करने वाले ज्यूल्स वर्न अब इस दुनिया में नहीं हैं, लेकिन जिस हाइड्रोजन ऊर्जा का सपना उन्होंने देखा था, उस दिशा में दुनिया की कई आर्थिक महाशक्तियां कदम बढ़ा रही हैं। आज स्पेस शटल के इलेक्ट्रॉनिक सिस्टम को हाइड्रोजन फ्यूल सेल के जरिये ही उत्प्रेरक ऊर्जा उपलब्ध कराई जाती है। इससे पानी के रूप में स्वच्छ सह-उत्पाद तैयार होता है। इसका उपयोग अंतरिक्ष यात्री जल के रूप में भी करते हैं। हाइड्रोजन फ्यूल सेल की आप बैटरी से

भी तुलना कर सकते हैं। जर्मनी जैसे देश ने भी इस्पात उत्पादन में कोयले के स्थान पर हाइड्रोजन ऊर्जा का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। वहां रेलवे परियोजनाओं में भी हाइड्रोजन ऊर्जा के अनुप्रयोग बढ़ रहे हैं। वहां हाइड्रोजन बसें तो काफी समय से सड़कों पर सरपट दौड़ ही रही हैं। आर्थिक संगठनों के मुताबिक 2050 तक हाइड्रोजन ऊर्जा का बाजार 2.5 खरब डॉलर का होगा।

भारत के संदर्भ में बात करें तो विगत कुछ वर्षों में जिस तेजी से हम अक्षय ऊर्जा के वैश्विक केंद्र बनकर उभरे हैं, उसे देखते हुए हाइड्रोजन ऊर्जा उत्पादन की दिशा में प्रभावी कदम बढ़ाना होगा। भारत इंटरनेशनल पार्टनरशिप ऑन हाइड्रोजन इकोनॉमी (आइपीएचई) के संस्थापक सदस्यों में शामिल है। वर्तमान में इसकी सदस्य संख्या 19 है। भारत ऊर्जा क्षेत्र को लेकर हमेशा से प्रयोगधर्मी रहा है। भारत का लक्ष्य है कि 2026-27 तक घरेलू ऊर्जा में 43 प्रतिशत हिस्सेदारी अक्षय ऊर्जा की हो। इसके लिए वित्त वर्ष 2020-21 में केंद्र सरकार ने 28 करोड़ डॉलर से अधिक का बजट हाइड्रोजन ऊर्जा के लिए भी तय किया है। भारत ऊर्जा से अंत्योदय के जिस मार्ग पर आगे बढ़ना चाहता है, वहां हाइड्रोजन ऊर्जा का आधार इसलिए भी बन सकता है, क्योंकि हमारे यहां कृषि अपशिष्ट और रीसाइकिल किए जाने योग्य कचरे की पर्याप्त उपलब्धता है।

यदि हम कृषि कार्यों से निकले अपशिष्ट और अन्य बायोमास का प्रयोग हाइड्रोजन ऊर्जा उत्पन्न करने में कर सकें तो यह ऊर्जा के एक नए युग का सूत्रपात होगा। हमारे यहां इस्पात उत्पादन के लिए आयातित कोयले पर निर्भरता अधिक है। केंद्र सरकार इस दिशा में प्रयासरत है कि इस्पात उत्पादन के लिए गैस आधारित उत्पादन को बढ़ावा मिले। इसी के समानांतर हाइड्रोजन भी इस्पात उत्पादन के वैकल्पिक ईंधन के रूप में उपयोगी हो सकता है। विश्व के कई देशों में हाइड्रोजन ऊर्जा नागरिक उड्डयन से लेकर जलयानों और कम दूरी के परिवहन का सशक्त माध्यम सिद्ध हो रही है। भारत यदि उड़ान जैसी योजनाओं के जरिये घरेलू नागरिक उड्डयन क्षेत्र को विस्तार देना चाहता है, तो उसके लिए महंगे एविएशन टरबाइन फ्यूल यानी एटीएफ की जगह हाइड्रोजन ऊर्जा टिकाऊ ईंधन स्नोट बन सकती है, लेकिन इसके लिए इस दिशा में व्यापक निवेश की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता।

हाइड्रोजन ऊर्जा को लोकप्रिय बनाने के लिए हमें सर्वप्रथम हाइड्रोजन स्टेशन की शृंखला खड़ी करनी होगी। सुरक्षा मानकों को पूरा करते हुए यदि हम इस दिशा में ठोस कदम उठा पाए तो पर्यावरण संरक्षण के साथ भारत के लिए आर्थिक तरक्की का नया द्वार हाइड्रोजन ऊर्जा के माध्यम से खुलेगा। इससे ग्रीन हाउस गैसों में कटौती का वह लक्ष्य भी पूरा होगा, जिससे न सिर्फ हमारी वर्तमान, बल्कि आने वाली पीढ़ियों का भी जीवन स्तर सुधरेगा।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:02-12-20

लोकसभा-विधानसभा चुनाव साथ कराने पर चर्चा जरूरी

टीसीए श्रीनिवास-राघवन

प्रधानमंत्री ने हाल में कहा था कि लोकसभा एवं राज्य विधानसभा चुनाव एक साथ कराने के विषय पर चर्चा शुरू करने का समय आ गया है। प्रधानमंत्री के अनुसार अलग-अलग समय पर चुनाव होने से देश में हमेशा मतदान जैसा माहौल बना रहता है, जिससे प्रशासनिक असुविधाओं के साथ ही आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया में भी बाधा पहुंचती है।

बात यहां तक तो ठीक है, लेकिन एक ठोस सवाल यह है कि लगभग दो अरब लोग साथ-साथ मतदान करेंगे तो इसके लिए पुख्ता व्यवस्था कैसे हो पाएगी। यह भी मान लें एक निश्चित अवधि में, मसलन 12 हफ्तों के दौरान, मतदान की प्रक्रिया चलती है तो भी क्या इसका प्रबंधन करना आसान होगा? क्या इसमें प्रशासनिक एवं मतों की गिनती आदि में आने वाली दिक्कतों का अंदाजा लगाया जा सकता है? चुनाव आयोग इन विषयों पर विस्तार से सब कुछ बताने की स्थिति में होगा। दूसरी तरफ एक विकल्प से दूसरे विकल्प की तरफ से बढ़ने पर होने वाले कुछ नुकसान से जुड़ा पहलू भी उठाया जा सकता है। आर्थिक सुधार तेज गति से नहीं होने से अर्थव्यवस्था को कितना नुकसान पहुंचता है? अर्थशास्त्री इस पर विस्तार से बता पाने की स्थिति में होंगे।

निष्क्रियता का बहाना

तो क्या यह व्यावहारिक क्रियान्वयन में आने वाली चुनौतियों बनाम उत्पादन नुकसान से जुड़ा विषय है, जो बाद में आर्थिक गतिविधियों में ठहराव का कारण बनता है? क्या यह स्थिति ठीक है? अगर ऐसा नहीं है तो स्पष्ट नजर आने वाली एक मुश्किल परिस्थिति का दूसरा विकल्प क्या है? पिछले दो दशकों से मैं लोकसभा एवं विधानसभा के चुनाव साथ कराने की वकालत करता रहा है। मेरे कई सुझाव प्रशासनिक, राजनीतिक एवं संवैधानिक आधारों पर खारिज किए जा चुके हैं। मैं इन आपत्तियों की समीक्षा करना चाहूंगा।

पहली बात तो सभी प्रशासनिक पहलू से जुड़ी आपत्ति संसाधनों की उपलब्धता से जुड़ी होती हैं। धन, मानव संसाधन और तकनीक की मदद से इनका समाधान किया जा सकता है। आधार परियोजना की तरह पांच वर्षों का इसी तरह का अभियान प्रशासनिक चुनौतियों से निजात दिला सकता है। दूसरा महत्वपूर्ण पहलू यह है कि राजनीतिक आपत्ति मतदाताओं के विरोध की सीमा से जुड़ा है। राजनीतिक दलों का मानना है कि मतदाता सत्तासीन दलों के प्रति पूर्वग्रह से ग्रसित होंगे, खासकर तब जब उनमें कोई केंद्र में सत्तारूढ़ होगा। हालांकि पहली आपत्ति के संबंध में साक्ष्य पूरी तरह निष्कर्ष पर पहुंचाने वाले नहीं हैं। इसके बजाय यह दूसरी चिंताओं की तरफ इशारा करता है। मतदाता को नासमझ नहीं माना जा सकता। वे निवर्तमान सरकारों को सबक सिखाने के साथ ही लोकसभा एवं विधानसभा चुनाव के बीच अंतर और महत्व को भली-भांति समझते हैं। तीसरी आपत्ति सांविधानिक है, जो अधिक गंभीर है। इनके लिए संविधान में संशोधन की जरूरत होगी, जो कतई आसान काम नहीं होता है। अंत में मामला इस प्रश्न पर आकर टिकेगा कि साथ-साथ चुनाव कराने से संविधान के मूलभूत ढांचे में बदलाव आएगा या नहीं? मुझे ऐसा नहीं लगता, लेकिन कई दूसरे लोगों को ऐसा लगता है। केवल उच्चतम न्यायालय ही इसका निर्णय ले सकता है।

अलग हो सोच

तमाम पहलुओं पर विचार करने के बाद हमें एक अच्छा एवं अनोखा समाधान चाहिए नहीं तो अनुच्छेद 370 की तरह ही हम इस विषय पर भी बहस करते रह जाएंगे। अगर ऐसा कोई समाधान निकलता है तो इसके तीन हिस्से हो सकते हैं। सबसे पहले चुनाव आयोग के पास ऐसी तकनीक उपलब्ध होनी चाहिए, जिससे वह एक साथ, स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव कार्य संपन्न कर सके। इसके साथ ही लोकसभा और विधानसभाओं का कार्यकाल मौजूदा 60 महीनों से बढ़ाकर 66 महीने

किया जाना चाहिए। यह अतिरिक्त छह महीने चुनावों- दो महीने लोकसभा और चार महीने विधानसभा- के लिए होना चाहिए।

तीसरे उपाय के रूप में एक क्षेत्रीय संसद की व्यवस्था होनी चाहिए, जो लोकसभा के सदस्यों का चुनाव कर सके। मैं इसके लिए भी पिछले दो दशकों से जोर देता रहा हूँ। क्षेत्रीय संसद का चुनाव राज्य विधानसभाओं का एक समूह करेगा। इस क्षेत्रीय संसद में शुद्ध स्थानीय हितों को जगह मिलेगी क्योंकि लोकसभा सांसद अपनी भूमिका बिल्कुल अलग रूप में देखेंगे। ऐसी व्यवस्था तैयार करने के लिए यूरोपीय संसद से सीख ली जा सकती है। अंत में, गहरे राजनीतिक सुधार को परेटो सिद्धांत के चश्मे से देखना उपयुक्त नहीं माना जा सकता है और कम से कम इसे परेटो सिद्धांत के चश्मे से देखना तो और गलत बात होगी। 19वीं शताब्दी में इटली के अर्थशास्त्री विलफ्रेडो परेटो ने कहा था कि एक जगह विकल्प से दूसरे विकल्प की तरफ बढ़ना तभी सही माना जा सकता है जब इस प्रक्रिया में किसी भी व्यक्ति को भी कोई नुकसान नहीं पहुंचता है।

एक छोटी आबादी को छोड़कर दूसरे समूहों के लिए इस सिद्धांत का लक्ष्य हासिल करना लगभग असंभव है। दुर्भाग्य से सभी गैर-सुधारवादी इसी मानदंड का पालने करने की तरफ झुकाव रखते हैं। यह निष्क्रियता एवं पूर्ण बरबादी के लिए तैयार नुस्खे जैसा ही है।

राष्ट्रीय
सहारा

Date:02-12-20

डूबते बैंक

संपादकीय

अंतरराष्ट्रीय वित्तीय रेटिंग एजेंसी मूडीज ने हाल में उभरते बाजारों के वित्तीय संस्थानों की स्थिति पर एक आकलन प्रस्तुत किया है। इस आकलन से जुड़े कई तथ्य भारतीय वित्तीय और बैंकिंग व्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण हैं। इस आकलन में मूडीज ने कहा है कि आगामी दो वर्षों में भारत और श्रीलंका में बैंकों की पूंजी के स्तर में गिरावट देखने को मिलेगी। एशिया में डूबत कजरे की तादाद बढ़ेगी। बैंकों को नया निवेश नहीं मिला, तो पूंजी में गिरावट होने के कारण बैंकों के पास कर्ज देने के लिए संसाधन कम रहेंगे। जब बैंक कर्ज ही ना दे पाएंगे, तो बैंक दुष्चक्र में फंसेंगे। भारत के कई सरकारी बैंक इस दुष्चक्र में पहले ही फंस चुके हैं। कोरोना जनित कारोबारी मंदी के चलते इस दुष्चक्र के और गहरे होने की आशंका है। सरकार के सामने भी चुनौती गहरी है। डूबते बैंकों में और ज्यादा पूंजी को डालकर पूंजी को डुबोने की ओर धकेलने की आशंका भी खड़ी हो जाती है। ऐसा लगातार देखने में आया है कि पूंजी डालने के बावजूद सरकार तमाम बैंकों की स्थिति को सुधार नहीं पाई है। खासकर छोटे सरकारी बैंकों की स्थिति विचारणीय है। छोटे सरकारी बैंकों में से कई के एटीएम काम नहीं करते, कई की बहुत सेवाएं उपयुक्त नहीं हैं। नए बैंकों ने, खासकर नए निजी बैंकों ने उपभोक्ताओं को तरह-तरह के प्रलोभन और बेहतरीन सेवाएं देकर अपनी ओर खींचा है। ऐसी सूरत में नए माहौल में

19वीं सदी के ढांचे के साथ कई छोटे सरकारी बैंक अपने अस्तित्व के लिए जूझते दिखाई पड़ सकते हैं। रिजर्व बैंक और सरकार के लिए यह तो बहुत आसान होता है कि किसी निजी क्षेत्र के समस्याग्रस्त बैंक का विलय निजी क्षेत्र के दूसरे बैंक के साथ कर दिया जाए। पर किसी सरकारी बैंक को किसी और दूसरे निजी बैंक में मिलाना बहुत चुनौतीपूर्ण है। ट्रेड यूनियन, राजनीतिक दलों का विरोध सामने आता है। किसी कमजोर सरकारी बैंक का दूसरे मजबूत सरकारी बैंक में मिलाने के अपने खतरे हैं। मजबूत सरकारी बैंक भी कमजोरी की राह पकड़ लेता है, ऐसी सूरत में ऐसे उदाहरण भी देखने को मिले हैं। कुल मिलाकर कोरोना ने तमाम चुनौतियां पेश की हैं और बैंकिंग जगत की चुनौती उनमें से एक है। संसाधन सीमित हैं, उन्हें डूबते बैंकों में झोंका जाए और उनकी बिक्री करके संसाधन हासिल किए जाएं, सरकार को इस मुद्दे पर गहन चिंतन करना होगा।
